Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 2 pp. 45-53, 2007
DOI: 10.51220/hjssh.v2i1.6

शंकर के मायावाद पर रामानुज की 'सप्त अनुपपत्ति' का विश्लेषण

सरिता सिंह

ह्यूमेनिटिजि एवं सोशल साइंस विभाग

उमानाथ सिंह इन्स्टीच्यूट ऑफ इन्जीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी

वीर बाहदुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

ABSTRACT

आचार्य रामानुज ने आचार्य शंकर के मायावाद या अविद्या सिद्धान्त के विरुद्ध अनेक आक्षेप प्रस्तुत किये है, जिसे सप्त अनुपपत्ति के नाम से जाना है। ये सप्त अनुपपत्ति इस प्रकार है- आश्रयानुपपत्ति, ब्रह्मावरकत्वानुपपत्ति, स्वरुपानुपपत्ति, अनिर्वचनीयानुपपत्ति, प्रमाणानुपपत्ति, निर्वर्त्तकानुपपत्ति एवं निवृत्यानुपपत्ति। आचार्य रामानुज द्वारा शंकराचार्य के मायावाद में उठाई गई सात अनुपपत्ति को तार्किक पराकाष्ठा पर पहुंचने वाला १४वीं शताब्दी का वेदान्त देशिक कृत ग्रन्थ शतदुषणी है। अद्वैतवादी अनन्त कृष्ण शास्त्री ने शतभूषणी लिखकर शतदूषणी का खण्डन किया।

Key words :- Analysis of sapt anuppatti of Ramanuj.

भारतीय दर्शन में माया का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित रहा है। उपनिषदों में ब्रह्म विद्या के अभाव को माया या अविद्या कहा गया है। मुण्डकोपनिषद् में 'अन्धेनेव नीत्रमानः यथान्धाः' कहकर अन्धे के द्वारा लें जाते हुए अन्धे की तरह अविद्या से घिरे व्यक्ति अज्ञानी, अहंकारी और अभिमानी होकर अपनी राह से भटक जाते है। ईशावास्योपनिषद् में (६–११)विद्या और अविद्या का स्वरुप विस्तार से समझाते हुए कहा गया है कि जो पुरुष केवल अविद्या की ही उपासना करते हैं वे आदर्शनात्मक या सांसारिक अज्ञान में प्रवेश कर जाते हैं[१]।

यहाँ पर एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारतीय दर्शन में माया की अवधारणा इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? डॉ० राधाकृष्णनन ने इस सम्बंध में लिखा है कि "विश्व की व्याख्या के लिए माया की अवधारणा, भारतीय दर्शन के चिन्तन का तर्क संगत परिणाम है" क्योंकि माया सम्प्रत्यय को स्वीकार किए बिना विश्व की व्याख्या भारतीय दार्शनिकों के लिए एक यह प्रश्न के रूप में उपस्थित था[२]। विश्व की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे की जाय– अनुभववादी व्याख्या देश, काल और कारण नियमों

© SHARAD

में बंधकर प्रस्तुत होती है जिसके अनुसार विश्व के प्रत्येक वस्तु के साथ आत्मा भी देश काल मे सीमित है। किन्तु भारतीय दर्शन ने आत्मा को सार्वभौम और शाश्वत माना है जबकि हम इस संसार में अनेक व्यक्तियों को एक दूसरे से विरोधी लक्षणों से युक्त पाते है। इन्हें हम विषय वस्तु या अनात्मा कह सकते हैं किन्तु किसी भी परिस्थिति में यह वास्तविक नहीं है। देश, काल और कारणता के सम्प्रत्यय आत्मव्याघात हैं, वे अपने अंगों पर निर्भर करने वाले सापेक्ष पद है। उनका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। फिर भी उन्हें हमें अस्तित्वहीन नहीं कह सकते। संसार है जिसमें हम रहते है और कार्य करते हैं किन्तु इसका कारण नही जानते कि यह विश्व क्यों है तथा इसमें हम क्यों है। यह अव्यारुयेत्र या अनिवर्चनीय तथ्य है।

माया ब्रह्म की शक्ति है। उससे संयुक्त होकर ब्रह्म विश्व की उत्पत्ति करता है, और तब वह ईश्वर कहलाता है। वेद वाक्य है–"कारणोपाधिरीष्वर अर्थात आत्मा अपने कारण शरीर माया से मिलकर ईश्वर कहलाती है[3]।"

ऋग्वेद में माया का प्रयोग इन्द्रजाल या छद्म के अर्थ में किया गया है और उपनिषदों में वही जगत की रचना करने वाली ईश्वरीय शक्ति बन गई। शंकर के अद्वैतवेदान्त में समस्त जगत ही मायामय हो गया। ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन साहित्य है, उसमें माया शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है[2,4]। ऋग्वेद का सबसे प्रसिद्ध वाक्य है 'इन्द्रो मायाभिः पुरुषमय ईयते' अर्थात इन्द्र मायाशक्ति से अनेक रुप धारण कर लेता है। यहां माया के साथ शुभ और अशुभ दोनों भाव जुड़े है। राक्षस की माया छल करने वाली और धोखा देने वाली है किन्तु मित्र और वरुण माया के द्वारा ही वर्षा करते हैं, अतः वह कल्याणकारी भी है। माया के कारण सूर्य और चन्द्र अस्त और उदित होते है। किन्तु दोनों ही भावों में माया शब्द का प्रयोग किसी रहस्मय शक्ति का सूचक हैं

उपनिषदों में ब्रह्म से संसार की उत्पत्ति बताई गई है और वहां माया शब्द का प्रयोग उसी सृष्टि के हेतु लिया गया है। समस्त देश–काल और कार्य–करण सहित जगत उस परमेश्वर मे रचित है जो माया शक्ति का धारणकर्ता है और माया के कारण ही जीव ब्रह्म में अन्य– सा होकर इस मायामय जगत में बंधा है।

मायां तु प्रकृति विद्यान्मयिन तु महेश्वरम्, तस्यावयवभूतैस्यु व्याप्तं सर्वमिंद जगत्[5]।

अर्थात प्रकृति को तो माया जानना चाहिए और महेश्वर को मायावीं। उसी के अवयवभूत से

यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। यहाँ इस बात का भी संकेत मिलता है कि माया अवयवभूत है यह लक्षण उसके स्वामी महेश्वर में नहीं है। संभव है ऋषि का संकेत माया के अवयवभूत सत्व, रज और तम तीनों गुण ही हो।

भगवद्गीता में भी कई बार माया शब्द का प्रयोग हुआ है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं यद्यपि अजन्मा हूँ और समस्त भूतों का स्वामी हूँ किन्तु प्रकृति को अपने वश में कर अपनी माया से प्रकट होता हूँ[६]। इसका तात्पर्य है कि अधिष्ठान में जब उसके विपरीत लक्षण दिखाई देते है, तो वह माया के कारण हैं, अजन्मा का जन्म माया से होता हैं। इसका परियच कराते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी माया गुणमयी है और उसे पार करना कठिन है, जो मेरी शरीण में आते है वही उसके पार जा पाते है। इस कथन का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि माया में मोहनीशक्ति है। उसके कारण ऐसी भ्रांति या विद्या उत्पन्न होती है कि उसमें पड़ा प्राणी अपने प्रयास मात्र से ही मुक्त नहीं हो सकता। गुणमयी का तात्पर्य सत्व, रज और तम गुणों से युक्त ही है और इन गुणों का वर्णन गीता में बड़े विस्तार से किया गया है। इन गुणों से अन्तर और ब्रह्म सृष्टि की रचना हुई है यहां माया शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे हुआ है– (१) जगत् की रचना करने वाली त्रिगुणात्मक प्रकृति और (२) जीव को बधन में डालने वाली मोहनी शक्ति। अन्यत्र श्रीकृष्ण स्वयं स्पष्ट करते है कि माया ज्ञान को अपहृत कर लेती है।यह भी कहा गया है कि " आज्ञानोनावृतं ज्ञानं" अज्ञान से ज्ञान आवृत होता है। दोनों की एकवाक्यता करने पर माया को अज्ञान ही मानना पड़ता है।

शंकर का मायावाद

आचार्य शंकर के दर्शन में माया ईश्वर की शक्ति है। यह माया ही है जो ब्रह्म के स्वरुप पर परदा डालकर उसे विश्व के रुप मे हमारे सामने प्रस्तुत करती है। उन्होंने माया और अविद्या (ignorance) को समानार्थक माना है। किन्तु बाद में वेदान्तियों ने इन दोनों में कई अन्तर बतलाये है– (क) माया भावात्मक (positive) है, किन्तु अविद्या निषेधात्मक (negative) है ब्रह्म को विश्व के रुप में प्रदर्शित करना माया का काम है। इसलिये यह भावात्मक है। इसके विपरीत अविद्या का अर्थ है– ज्ञान का अभाव, इसलिए यह निषेधात्मक है। ज्ञानोदय के साथ ही अविद्या का नाश हो जाता है, किन्तु माया ईश्वर की शक्ति होने के कारण नष्ट नहीं होती। (ग) माया में सत्वगुण की प्रधानता रहती है, किन्तु अविद्या में तमोगुण की प्रधानता है। (घ) अविद्या का आरम्भ होता है, किन्तु माया अनादि (beginningless) है[७]।

माया रहती कहाँ है? शंकर का कहना है कि ब्रह्म ही माया का आश्रय या निवास स्थान है। ब्रह्म में रहते हुए भी माया ब्रह्म को प्रभावित नहीं कर पाती। यह ठीक प्रकार है जिस प्रकार जादूगर का जादू उसे प्रभावित नहीं कर पाता। माया ब्रह्म को सीमित भी नहीं कर पाती, जिस प्रकार घटा सूर्य को सीमित नहीं कर पाती[७]।

शंकर के अनुसार माया ब्रह्म का विवर्त्त (appearance) है। यह अध्यास (superimposition) स्वरुप है माया के कारण ही ब्रह्म विश्व में रुपांतरित होता दीख पड़ता है। यह अनिर्वचनीय (indescribable) है। यह न तो सत् है और न असत है। यह ब्रह्म से स्वतंत्र नहीं होने के कारण सत् नहीं कही जा सकती।ब्रह्म इसी के द्वारा विश्व का प्रदर्शन करता है, इसलिए इसे (माया को) असत् नहीं कहा जा सकता। यह अनादि (beginningless) है। यह निश्चित रुप से कहना असम्भव है के विश्व की वास्तविकता का भ्रम कब से आरम्भ हुआ। माया का अन्त सम्यक् ज्ञान (right knowledge) द्वारा सम्भव है। माया ब्रह्म की आन्तरिक शक्ति है। इसी के द्वारा नानारुपतामक विश्व का प्रदर्शन करती हैं माया ब्रह्म में निवास करती हुई भी इसे प्रभावित या सीमित नहीं कर पाती। यह अचेतन (unconcious) है, व्यवाहारिक दृष्टिकोण से उपयोगी है। विश्व की वास्तविकता का भ्रम हमारे दैनिक कार्यो का संचालन करता है। माया के दो मुख्य कार्य है– ब्रह्म के स्वरुप पर परदा डालना (concealment) और ब्रह्म को विश्व के रुप में प्रदर्शित करना (distortion)[७]।

रामानुज की सप्त अनुपपत्ति :-

आचार्य रामानुज ने शंकर के मायावाद या अविद्यावाद का खंडन करते हुए उसमें सात प्रमुख दोष बतलाये हैं जिन्हें सप्त अनुपपत्ति कहा जाता है। ये सप्त अनुपपत्ति इस प्रकार है :–

आश्रयानुपपत्ति :- माया का आश्रय या निवास–स्थान क्या है? शंकर का उत्तर है कि ब्रह्म माया का आश्रय है। रामानुज इसमत का खंडन करते है। उनका तर्क यह है कि यदि माया को ब्रह्म में स्थित मान लिया जाय तो शंकर का अद्वैत वेदान्त अद्वैतवादी नहीं रहकर द्वैतवादी बन जाता है इसलिए ब्रह्म माया का निवास–स्थान नहीं हो सकता। जीव को माया का निवास–स्थान नहीं माना जा सकता, क्योंकि जीव तो माया का ही कार्य (effect) है और कारण अपने कार्य पर आश्रित नहीं हो सकता।

ब्रह्मावरकत्वानुपपत्तिः- शंकर का कहना है कि ब्रह्म स्वतः प्रकाशमय है और माया इस पर परदा डालकर इसे छिपा देती है।रामनुज शंकर के कथन में आत्म– विरोध बतलाते है। यदि ब्रह्म स्वयं

प्रकाशमय है तो इसे माया परदा डालकर छिपा कैसे सकती हैं? अतः यह स्वीकार नही किया जा सकता कि माया ब्रह्म के स्वरुप को परदे के भीतर छिपा देती है।

स्वरुपानुपपत्तिः- माया का स्वरुप क्या है? यह भावात्मक है या निषेधात्मक? इस प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर ने तो शंकर ने दिया है और न उनके अनुयायों ने । कुछ अद्वैत वेदान्तियों ने इसे भावात्मक बतलाया है तो कुछ ने निषेधात्मक माना है। रामानुज का कहना है कि माया को न तो भावात्मक माना जा सकता है और न इसे निषेधात्मक ही कहा जा सकता है। यदि माया को भावात्मक माना जाय तो इसे अविद्या नहीं कहा जा सकता क्योंकि अविद्या का अर्थ ज्ञान का अभाव (absense of knowledge) होता है। इसके अतिरिक्त भावात्मक होने पर इसे अविनाशी होना चाहिए, किन्तु यह अविनाशी नहीं है। इसलिए माया को भावात्मक नहीं कहा जा सकता। अब यदि इसे निषेधात्मक माना जाय तो फिर यह ब्रह्म पर विश्व को आरोपित कैसे कर पाती है?

अनिर्वचनीयानुपपत्तिः- शंकर द्वारा माया को 'अनिर्वचनीय' बतलाना भी निराधार है।रामानुज का तर्क है कि माया को 'अनिर्वचनीय' कहा जाता है तो 'माया अनिर्वचनीय है– स्वयं माया या अविद्या का एक वर्णन हो जाता हैं। इस तार्किक उलझन को टालने के लिए अद्वैतवादी अनिर्वचनीय को एक अजीब अर्थ प्रदान करते है। इनके अनुसार अनर्वचनीय (indescribable)वह है जो सत् न हो और न असत् हो, जो न तो वास्तविक हो न अवास्तविक हो। सत् और असत् वास्तविक और अवास्तविक परस्पर व्याधातक (contradictory) हैं। इनके बीच कोई अन्य विकल्प नहीं हो सकता। इसलिए इन व्याधातक पदों के मध्य अर्निचनीयता को रखना सर्वथा अतार्किक एवं दोषपूर्ण है।इस प्रकार शंकर के अद्वैत वेदान्त द्वारा माया को अनिर्वचनीय बतलाना निराधार और भ्रामक है।

प्रमाणनुपपत्तिः- माया या अविद्या का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? प्रत्यक्ष द्वारा माया का ज्ञान नहीं मिल सकता क्योंकि यह (माया) न तो वास्तविक और न ही अवास्तविक हैं। अनुमान द्वारा भी माया का ज्ञान नहीं मिल सकता क्योंकि अनुमान के लिए प्रत्यक्ष ज्ञान का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त , अनुमान के लिए व्याप्ति (universal relation) का भी होना आवश्यक है। रामानुज का कहना है कि माया का ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान शब्द आदि किसी भी साधन द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता।

निवर्त्तकानुपपत्तिः- शंकर के अद्वैत वेदान्त में माया को भावरुपम् अज्ञानम् कहा गया है। दूसरे शब्दों में, माया भावरुप अर्थात भावात्मक है। माया भावात्मक होने के कारण अस्तित्ववान (existent)हो जाती

है। इसलिए इसे अस्तित्वहीन या नष्ट नहीं किया जा सकता।

निवृत्यानुपत्ति- शंकर के अनुसार निर्गुण एवं अभेद ब्रह्म का ज्ञान ही अविद्या नष्ट कर सकता है। रामानुज का यह कहना है कि निर्गुण एवं अभेद ब्रह्म का ज्ञान सम्भव नहीं है। प्रत्येक ज्ञानक्रिया में द्वैत (dualism)बना रहता है। अद्वैत के मूल मे भी द्वैत छिपा रहता हैं, द्वैत के अभाव में अद्वैत का कोई अर्थ नहीं रहता। इस प्रकार, शंकर द्वारा निर्धारित साधन से अविद्या का विनाश सम्भव नहीं।

विश्लेषण- डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री ने रामानुज के उपर्युक्त आक्षेप की समालोचना करते हुए निम्नलिखित दोष बतलाए है:

(अ) आश्रयानुपपत्ति के अन्तर्गत रामानुज के तर्क का प्रथम दोष तो यह है कि अविद्या को सत् पदार्थ मानकर उसके आश्रय का अन्वेषण करते हैं, जबकि अविद्या सत् न होकर असत् है, अविद्या विद्या का अभाव एवं आवरण है। इस सम्बन्ध में डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री ने एक दृष्टान्त देते हुए कहा है कि जिस प्रकार चिंगारी में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार उपाधियों में ब्रह्म की सत्ता एवं चैतन्य भाव छिपा रहता हैं[6]।।

(ब) डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री के अनुसार रामानुज के तर्क का द्वितीय दोष यह है कि वे ब्रह्म एवं जीव को पृथक–पृथक सत्ता स्वीकार करते हैं। ब्रह्म एवं जीव की भेद व्यवस्था का निराकरण करते हुए डा० प्रभुदत्त शास्त्री का कथन है कि उपाधि के कारण ही ब्रह्म और जीव की भेद व्यवस्था संभव है। जहाँ तक अविद्या के आश्रय का कथन है कि मन और इन्द्रियों की उपाधियां ही अविद्या की आश्रय है।

डा० प्रभुदत्त शास्त्री का द्वितीय मत भी दोषपूर्ण है। डा० शास्त्री ने जीव एवं ब्रह्म की भेद व्यवस्था का निराकरण करते हुए कहा है कि उपाधि के कारण ही ब्रह्म का भेद देखने में आता है। इनके अतिरिक्त डा० शास्त्री का मन और इन्द्रियों की उपाधियों को अविद्या का आश्रय कहना भी संगत नहीं है, क्योंकि मन और इन्द्रियों की उपाधियाँ भी अविद्या रुप ही है। इस प्रकार डा० शास्त्री द्वारा रामानुज की आश्रयानुपति युक्ति–युक्त कहना कदापि नहीं हैं।

आश्रयानुपाति के प्रसंग में सर्वप्रथम यह कहा जायेगा कि जीव और अविद्या दोनों अनादि हैं अतः जीव भी अविद्या का आश्रय हो सकता है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्म भी अविद्या का आश्रय हो सकता है। क्योंकि विरोध विद्या या प्रभा से है न कि प्रकाश या चैतन्य स्वरुप ब्रह्म से। अर्थात

हमकों प्रभा का ज्ञान और शुद्ध चैतन्य में भेद करना चाहिए।

ब्रह्मावरकत्वानुपपत्ति या तिरोधानानुपपत्ति के उत्तर में स्मरणीय है कि तिरोधान वास्तविक नहीं मिथ्या है। दूसरी बात यह है कि अविद्या के कारण ब्रह्म के प्रकाश का तिरोधान नहीं होता और न अस्तित्व का होता है। तिरोधान केवल आनान्दांश या अनन्ता का होता है। अविद्या स्वयं मिथ्या है अतः उसके द्वारा तिरोधान भी मिथ्या है। तिरोधान सम्भव इसलिए है कि ब्रह्म प्रमाण नहीं है। अतः उसका विरोध अविद्या से नही है। अविद्या का आवरण प्रकाश का नाशक न होकर प्रकाश का प्रतिबंधक ही है। आत्मबोध होने पर प्रकाश के प्रतिबंधक अज्ञान की ही निवृत्ति होती है न कि स्वरुप ज्ञान की।जिस प्रकार घट से आवृत दीपक और दंडपात होने से घटावरण मात्र की निवृत्ति सम्भव है, न कि स्वरुप ज्ञान की। अतः अविद्या के आवरण के द्वारा रामानुज द्वारा की गई स्वरुप ज्ञान के विनाश की कल्पना निरर्थक ही कहीं जायेगी।

स्वरुपानुनपपत्ति के उत्तर में यह कहना है कि रामानुज की दृष्टि में अविद्या की स्वरुपानुपपत्ति का कारण अद्वैत वेदान्त के अनिर्वचनीयवाद सिद्धांत की अवहेलना है। अनिर्वचनीयवाद के अनुसार अविद्या न सत् रुप है और न असत् रुप, सदसत् से विलक्षण है। सदसत् से विलक्षण होने के कारण ही अविद्या को अद्वैत वेदान्त मे अनिर्वचीय कहा गया है। इस प्रकार अविद्या को अनिर्वचनीय मान लेने पर उसकी स्वरुपानुपपत्ति का प्रश्न नही उपस्थित होता। अनिर्वचनीयता के द्वारा ही परमार्थ में अविद्या की असत्यता एंव व्यवहार से सत्यता सिद्ध होती है। अतः अविद्योत्पन्न संसार यदि परमार्थरुप से सत् नहीं है तो बंध्यापुत्रादिवत् नितांत असत् भी नहीं है। इसलिए अनिर्वचनीय वाद के आधार, अद्वैत वेदान्त में मायिक जगत की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार किया गया है।

अनिर्वचनीयनुपपत्ति के उत्तर में यह कहना है कि रामानुज का अनिर्वचनीयता को प्रणाम–असिद्ध कहना समीचीन नहीं है। सद् वस्तु का बाध नहीं होता और असत् की प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार प्रतीत का विषय सद्असदविलक्षणत्व में अर्थापत्ति के द्वारा सिद्ध है। इसके अतिरिक्त रामानुज का प्रतीत को सदसदाकार कहना भी उपयुक्त है। किसी भी वस्तु की प्रतीति सदसदाकार नहीं होती। इसीलिए मीसांसक की सदसत्ख्याति का भामतीकार द्वारा पूर्णतया निराकरण किया गया है। यदि कहा जाए कि सदसदाकारवती अविद्या ही समस्त कार्य जगत् का उपादान है तो यह असंगत है, क्योंकि अविद्या को सदसदाकारा मानने पर समस्त विषयों की प्रतीति भी सदसदाकारा ही मानी जायेगी और इसका परिणाम यह होगा कि ख्यातिवाद अनुपन्न ही रह

जायेगा। इस प्रकार ख्यातिवाद की अनापत्ति ही अनिर्वचनीय अविद्या में प्रणाम है[१०]।

प्रणामकानुपत्ति के उत्तर में कहा जा सकता है कि अविद्या सत् नहीं है वह केवल अध्याय है। और जैसे ही, जिस भूमि पर अविद्या आरोपित की गई है, उसका सत् ज्ञान प्राप्त होता है। अविद्या का स्वतः विलोप हो जाता है।रस्सी के सत् ज्ञान से उस पर आरोपित सर्प स्वतः तिरोहित हो जाता है। अनिर्वचनीय अविद्या अर्थापत्ति एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है। सदसद्विलक्षण एवं अनिर्वचनीय वस्तुओं का स्वरूप स्वरूप पारमार्थिक सत एवं आलोक असत् से विलक्षण होने के कारण ही प्रत्यक्ष का विषय है। इसलिए शंकर ने जगत् के उपादान एवं अनिर्वचनीय अध्याय को लोकप्रत्यक्ष का विषय कहा है। अतः अनिर्वचनीय वस्तुओं को प्रमाणोपपत्ति स्पष्ट ही सिद्ध हैं ।

निवर्तकानुपत्ति के उत्तर में यह कहा जा सकता है। कि वस्तुतः यह दृष्टिकोण का अन्तर है। रामानुज अविद्या के निवर्त्तन के लिए ज्ञान मार्ग का खंडन, भक्तिमार्ग का समर्थन करते है। और इसलिए ज्ञान से अविद्या का निवर्त्तन संभव नहीं मानते। रामानुज ने निर्गुण–ब्रह्म ज्ञान के विरोध में जिन 'वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तम्' (श्वेता० उपनि० ३/८) आदि स्थलों को उद्वत किया है, वे वाक्यार्थ या अनुवाद मात्र की दृष्टि से ही सगुण ब्रह्म के समर्थक है, परन्तु उनका लक्ष्य परमात्मा को अविद्या रुप अंधकार से सर्वथा अतीत कहना एवं सप्रकाशस्वरुप चित्तत्व के बोध की ओर संकेत करना ही है। इसी प्रकार श्रीभाष्यकार द्वारा उद्धृत अन्य वाक्यो का भी अद्वैत वेदोन्त में भी पर एवं अपर ब्रह्म के रुप में निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार से ही ब्रह्म का निरूपण किया गया है। परन्तु निगुर्ण ब्रह्म के ज्ञान को ही मनुष्य जीव का सर्वोच्च प्रतिपादित किया है। अतः रामानुज का निर्वत्तकानुपपत्ति का सिद्धान्त पुष्ट तर्क पर आधारित नही कहा जा सकता।

निवृत्यानुपपत्ति के उत्तर में यह कहा जा सकता है। कि यह भी दृष्टिकोण का ही अंतर है। किन्तु सामान्य जीवन में स्पष्ट है कि अविद्या की निवृत्ति ज्ञान से होती है न कि भक्ति और ईश्वर की कृपा से। मिथ्या विषय (जैसे सर्प) पहले भाव रुप में प्रकट होता है और फिर रज्जु का सत् ज्ञान हाने पर नष्ट हो जाता है, वैसे ही भावरुप माया है जो ब्रह्म के सत् ज्ञान से ही नष्ट हो सकती है। स्वप्न की भूख और स्वप्न का भोजन दोनों मिथ्या होते है फिर स्वप्न की भूख स्वप्न के भोजन से ही जा सकती है। जागृति भोजन से नहीं। उसी प्रकार मिथ्या बंधन निवर्त्तक ज्ञान से नष्ट हो सकता है। मिथ्यातत्व के निवृत्ति हो जाने पर निर्वतक ज्ञान भी अग्नि के समान अपने आप शांत हो जाता है। अविद्या का नाश ज्ञान द्वारा ही होता है। यह जगत् प्रसिद्ध है यदि बंधन कर्म से भी माना जाए

तो गीता और उपनिषदों में स्पष्ट कहा गया है कर्मों का नाश हो जाता है। कर्म अज्ञान के कारण होते है और अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है। अतः अज्ञान को बंधन का अन्तिम कारण मानना चाहिए। अतः सूक्ष्मतया विचार करने पर रामानुज का निवृत्यानुपपत्ति का तर्क असंगत प्रतीत होता है। रामानुज द्वारा दिए गये तर्क निराधार है।

सहायक ग्रन्थ सूची

१ आचार्य शंकर का मायावादः एक विहंगम दृष्टि– डॉ० सरिता सिंह। यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली, २००७।

२ भारतीय दर्शन के मूल संप्रत्यय– कार्यानन्द शर्मा, मोतीलाल बनारसी दास– दिल्ली, १६८८।

३ अद्वैत वेदान्त (इतिहास और सिद्धान्त)– डा० राममूर्ति शर्मा।

४ ऋग्वेद संहिता–चतुर्थ और द्वितीय भाग – मैक्समूलर संपादित, चौखम्भा, – ग्रन्थमाला, वाराणसी, १६६६।

५. भगवद्गीता ४.६।

६. भगवद्गीता, अध्याय, १४, १७ और १८।

७. Teach yourself philosophy: Indian Philosophy - Dr. R.P. Sharma

८. The Doctorine of Maya - P.D. Shastri

९. भामती–वाचस्पति मिश्र – निर्णय सागर, प्रेस, बम्बई १६३८।

१०. अद्वैत तत्वसुधा, द्वितीय भाग, प्रथम सम्पुट।